स्वतंत्र भारत में विकलांगों की दुर्दशा : संविधान निर्माण से वर्तमान तक संवेदनशीलता की कमी और उसके नकारात्मक परिणाम - भाग 1

सुबोध जोशी

Freelance translator and author (English & Hindi), Madhya Pradesh

सारांश

भारत में विकलांगों की स्थिति बेहद ख़राब है। समाज में संवेदनशीलता का अभाव इसका सर्वप्रमुख कारण है। स्वतंत्र भारत में आरंभ से ही यह संवेदनहीनता व्याप्त रही है जिससे देश के संविधान निर्माता भी अछूते नहीं रहे। नतीजतन आधी शताब्दी तक देश में विकलांगों को कोई क़ानून नसीब नहीं हुआ। उनके लिए बना पहला क़ानून स्व-प्रेरित नहीं बल्कि अंतर्राष्ट्रीय संधि पर आधारित था और बीस सालों बाद इसके स्थान पर लागू होने वाला नया क़ानून भी अंतर्राष्ट्रीय संधि के कारण बना। विकलांगों के प्रति इस नकारात्मक रवैये का दुष्प्रभाव उनके हितों से जुड़े प्रत्येक पहलू पर पड़ा। राष्ट्रीय जनगणना से उन्हें बाहर रखा गया। चिकित्सा, शिक्षा, रोज़गार, स्वरोज़गार आदि सभी क्षेत्रों में उनकी गंभीर उपेक्षा हुई। उनके लिए भौतिक रूप से बाधामुक्त वातावरण आज भी दिवास्वप्न है। विकलांगों को प्राप्त सामाजिक सुरक्षा अत्यंत अल्प है। उनकी आबादी के सही आंकड़े आज तक उपलब्ध नहीं हैं। उनके कल्याण की सामाजिक सुरक्षा नीतियाँ, कार्यक्रम और योजनाएँ ग़लत आंकड़ों पर आधारित हैं और आर्थिक लागतों से उनका कोई संबंध नहीं है, नतीजतन उनसे वास्तविक लाभ मिलना संभव नहीं है। एक तरफ शिक्षा एवं आर्थिक पुनर्वास के अभाव और दूसरी तरफ सामाजिक सुरक्षा के अभाव से जूझ रहे विकलांगजन आत्मनिर्भरता एवं सम्मान के साथ जीवन जीने के बजाय पराश्रित जीवन जीने के लिए बाध्य हैं। इन सच्चाइयों की तरफ तत्काल ध्यान देते हुए ठोस सकारात्मक कार्यवाही करते हुए स्थितियाँ सुधारने की ज़रूरत है।

प्रमुख शब्द : विकलांग, विकलांगता, संवेदनशीलता, संविधान, क़ानून, बाधामुक्त वातावरण, जनगणना, शिक्षा, अनिवार्य शिक्षा, रोज़गार, स्वरोज़गार, पुनर्वास, सामाजिक सुरक्षा, रोकथाम, शीघ्र पहचान, हस्तक्षेप, चिकित्सा, प्रमाण-पत्र, यूडीआईडी, यूएनसीआरपीडी, संयुक्त राष्ट्र संघ, डीआरएम, विश्व स्वास्थ्य संगठन, विश्व बैंक।

भारत में विकलांगों की स्थिति हमेशा ख़राब ही रही है। विकसित देशों की तुलना में यह बेहद ख़राब है। विकलांगों को सिर्फ सहानुभूति की नज़र से देखना या उनके प्रति दिल में सिर्फ सहानुभूति का भाव रखना पर्याप्त नहीं है। विश्व में विकलांगता और विकलांगों के प्रति सोच और दृष्टिकोण पुराने ज़माने के मुकाबले अब काफ़ी बदल गए हैं। सूचना और संचार क्रांति के साथ वैश्वीकरण ने दुनिया में जानकारी का तत्काल और बड़े पैमाने पर प्रसार संभव बना दिया है, जिसके चलते भारत या किसी भी देश में विकलांगों की स्थिति की तुलना दुनिया के किसी भी देश के विकलांगों की स्थिति से बड़ी आसानी से की जा सकती है। जाहिर है खुद की स्थिति बेहतर स्थिति वाले के मुकाबले ही देखी जाएगी। इस प्रकार तुलनात्मक रूप से देखने पर विकसित देशों की तुलना में भारत में विकलांगों की स्थिति बहुत ही ख़राब है। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर समझौतों या संधि पत्रों पर हस्ताक्षर कर उन्हें अपना कर अपने देश में लागू करने की प्रतिबद्धता दर्शाने के बावजूद भारत में विकलांगों की स्थिति इतनी ख़राब क्यों है, इस बारे में गंभीरतापूर्वक चिंतन करना बेहद ज़रूरी है।

दरअसल, दुनिया में समय के साथ विकलांगों के प्रति सोच और दृष्टिकोण में बदलाव आए हैं और अनेक देशों ने इन्हें अपनाते हुए ईमानदारी से काम किया है। यही एक सबसे बड़ा अंतर है। किसी सोच या दृष्टिकोण को सिर्फ़ अपनाना अलग बात है और उसे अपना कर उस पर ईमानदारी से अमल करना और बात है। भारत में यही हुआ है कि अंतरराष्ट्रीय समुदाय को खुश करने के लिए विकलांगता संबंधी सोच या दृष्टिकोण को अपनाया गया लेकिन उन पर अमल करने की इच्छा पूरी तरह नदारद रही। ऐसे में विकलांगों के लिए कितने भी क़ानून, नीतियाँ, कार्यक्रम और कल्याणकारी योजनाएं बना ली जाएँ, विकलांगों की स्थिति में सुधार लाना असंभव है। विकलांगों को अपंग, अशक्त, नि:शक्त या दिव्यांग कह देने से ही उनकी स्थिति में कोई सुधार नहीं हो जाता। इसके लिए क़ानूनों के साथ सच्ची संवेदनशीलता, स्थिति की समझ, सही नियोजन और कार्यान्वयन अनिवार्य हैं।

विकलांगों की शिक्षा :

चिकित्सा सेवाओं के बाद मानव जीवन में अगली ज़रूरत शिक्षा की होती है। शिक्षा का महत्व सर्वविदित है। यही कारण है कि शिक्षा पर समस्त विश्व में ध्यान दिया जा रहा है

और इसे भारत में भी स्वीकारा गया है। सन 2002 में भारतीय संविधान में 86वें संशोधन 21A के माध्यम से शिक्षा को मौलिक अधिकार का दर्जा दिया गया जिसके अनुसार देश के 6 से 14 वर्ष की आयु के बच्चों के लिए शिक्षा का अधिकार एक मौलिक अधिकार बन गया। इस आयु वर्ग के बच्चों को 1ली से 8वीं तक की शिक्षा दी जानी है। इसे अमली जामा पहनाने के लिए भारतीय संसद ने शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 पारित किया। इसमें 25% स्थान वंचित वर्गों के लिए आरक्षित रखा गया, जिसमें विकलांग भी शामिल हैं। चूँकि शिक्षा सभी बच्चों का मौलिक अधिकार हो गयी, इसलिए विकलांग बच्चों को भी यह अधिकार मिल गया। लेकिन विकलांग बच्चों को शिक्षा से जोड़ना और शिक्षा में उनका ठहराव बनाए रखना आसान नहीं था और अब भी नहीं है। इससे संबंधित अनेक बाधाएँ हैं, जैसे- अभिभावकों में जागरूकता और प्रेरणा की कमी, गरीबी, घरों से शालाओं की दूरी, आवागमन की कठिनाइयाँ और सहायक उपकरणों की कमी, बाधामुक्त वातावरण का अभाव आदि। बच्चों की विशेष आवश्यकताओं के अनुसार मौलिक संरचना, विशेष शिक्षकों, बाधामुक्त वातावरण, शिक्षण-अधिगम सामग्री एवं प्रणाली, परीक्षा एवं मूल्यांकन प्रणाली आदि अन्य अनेक महत्वपूर्ण ज़रूरतें होती हैं जिनकी पूर्ति में गंभीर कमी है। विभिन्न प्रकार की विकलांगताओं के विषय में योग्यता प्राप्त विशेष शिक्षकों की भी बड़े पैमाने पर कमी है।

भारत में विकलांग बच्चों का शिक्षा से जुड़ना हमेशा ही कठिन रहा है। वे निकट के विद्यालयों में ही जा सकते थे और वह भी तब जब विद्यालय उन्हें प्रवेश देने के लिए तैयार हो क्योंकि 2010 तक यह क़ानूनन अनिवार्य भी नहीं था। विद्यालय आने जाने में कठिनाई, वहाँ उनके लिए बैठक व्यवस्था, पानी पीने, शौचालय के इस्तेमाल संबंधी कठिनाई, बाधामुक्त वातावरण एवं अनुकूलन की कमी, विकलांगता के प्रकार के अनुसार शिक्षण, परीक्षण एवं मूल्यांकन की प्रणाली की कमी आदि अनेक कारण बच्चों को शिक्षा से जोड़ने और जोड़े रखने में बाधक रहे हैं और अब भी हैं।

अनिवार्य शिक्षा के क़ानून का पालन मुख्य रूप से शासकीय विद्यालयों तक ही सीमित रहा है। निजी विद्यालयों में इसके लिए तैयारी नहीं हुई, वे इससे दूर रहे या उनकी ठीक से निगरानी नहीं की गयी। अब निजी विद्यालयों को भी इसके पालन के निर्देश दिए जाने की खबर है। अनिवार्य शिक्षा का क़ानून लागू होने के बाद 6 से 14 वर्ष की उम्र के बच्चों के लिए पहली से आठवीं कक्षा तक की शिक्षा अनिवार्य हो गई। इसके लिए राष्ट्रीय स्तर पर सर्व शिक्षा अभियान और उसके अंतर्गत विकलांगों की समावेशी शिक्षा की परियोजना बनाकर लागू की गई। प्रत्येक राज्य में इसके कार्यान्वयन के लिए राज्य शिक्षा केंद्र और ज़िला शिक्षा केंद्र मौजूद हैं। ज़िला कलेक्टर ज़िला शिक्षा केंद्र का मुखिया होता है। प्रत्येक ज़िले में ज़िला परियोजना समन्वयक के अंतर्गत सहायक परियोजना समन्वयक (विकलांगता) होता है। इसके अलावा तहसील स्तर पर विकासखंड परियोजना समन्वयक होते हैं। सरकारी स्कूलों में विकलांगों की शिक्षा के कार्यान्वयन पर निगरानी के लिए मोबाइल स्रोत सलाहकार (शहरी) और मोबाइल स्रोत सलाहकार (ग्रामीण) होते हैं जो विकलांगों की समावेशी शिक्षा से संबंधित संपूर्ण कार्यान्वयन के लिए फ़ील्ड वर्क करते हैं और प्रभावित परिवारों, सरकारी विद्यालयों, शिक्षा विभाग और प्रशासन के बीच एक महत्वपूर्ण कड़ी का काम करते हैं। गंभीर रूप से विकलांग बच्चों को भी कुछ शैक्षणिक लाभ पहुंचाया जा सके इसके लिए वॉलंटियर नामक पद निर्मित किया गया है। वॉलंटियर ऐसे बच्चों के घरों पर जाकर सेवा प्रदान करते हैं। अब तक इस दायरे में, सहायक परियोजना समन्वयक (विकलांगता) और मोबाइल स्रोत सलाहकारों के कार्य क्षेत्र में निजी विद्यालयों को शामिल नहीं किया गया था। ऐसे में सर्व शिक्षा अभियान के अंतर्गत विकलांगों की समावेशी शिक्षा का संपूर्ण दायित्व एक तरह से शासकीय विद्यालयों पर आ गया। इस कारण निजी विद्यालयों में न तो बाधामुक्त वातावरण निर्मित करने की दिशा में शासकीय विद्यालयों की तरह कार्य हुआ और न ही विकलांग बच्चों की भर्ती अधिक संख्या में हुई। विकलांगों की समावेशी शिक्षा की परियोजना के कार्यान्वयन के स्तर में भी जगह-जगह फर्क रहा है क्योंकि कहीं इसका कार्यान्वयन स्वयं शासकीय विभाग द्वारा किया गया और कहीं इसका कार्यान्वयन ग़ैर सरकारी संस्थानों (एन.जी. ओ.) के माध्यम से किया गया। कार्यान्वयन के स्तर पर ग़ैर सरकारी संस्थानों (एन.जी. ओ.) के कार्य के अलग-अलग तरीकों और उनकी प्रतिबद्धता के अंतर का भी प्रभाव पड़ा।

विकलांगों की शिक्षा संबंधी समस्याएं प्राथमिक शिक्षा के बाद और बढ़ती चली जाती हैं। 8वीं कक्षा के बाद माध्यमिक एवं उच्चतर माध्यमिक स्तर और उसके बाद स्नातक और स्नातकोत्तर स्तर पर अनिवार्य शिक्षा का क़ानून लागू नहीं होता। इसलिए इन स्तरों पर विकलांगों की शिक्षा के लिए तैयारियाँ, वातावरण, अनुकूलन आदि और कम हैं। परिणामस्वरूप इन स्तरों पर विकलांग उम्मीदवार शिक्षा से और कम जुड़ पाते हैं। हालाँकि, अभेदभाव, बाधामुक्त वातावरण, अवसरों की समानता, अधिकारों का संरक्षण, पूर्ण भागीदारी, आरक्षण जैसे प्रावधान विकलांगता संबंधी क़ानून/क़ानूनों के माध्यम से लागू किए गए हैं, लेकिन ज़मीनी स्तर पर इनका कार्यान्वयन दिखाई देना शेष है।

विकलांग परीक्षार्थियों की विशेष आवश्यकताओं को वैज्ञानिक आधार पर समझते हुए उन्हें सभी प्रकार की लिखित

परीक्षाओं में समान धरातल उपलब्ध कराने के उद्देश्य से भारत के मुख्य दिव्यांगजन आयुक्त द्वारा 23 नवंबर 2012 को एक आदेश जारी किया गया था। इस आदेश के आधार पर केंद्रीय सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय (विकलांगजनसशक्तिकरण विभाग) ने 26 फरवरी 2013 को विस्तृत दिशा निर्देश जारी किए थे। लिखित परीक्षा आयोजित करने वाले सभी पक्षकारों के लिए इन दिशा निर्देशों का पालन करना अनिवार्य है। इनका पालन सुनिश्चित करने के लिए आवश्यकतानुसार टेक्नॉलॉजी और नए उपायों का उपयोग भी किया जाना चाहिए। लेकिन दुर्भाग्यपूर्ण है कि अधिकांश छात्रों, उनके अभिभावकों, विद्यालयों, महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों को न तो इसकी जानकारी है और न ही यह आसानी से उपलब्ध है। यह बहुत विस्तृत सुविधा के दिशा निर्देश हैं, लेकिन मोटे तौर पर छात्रों को अधिक से अधिक या तो अतिरिक्त समय या लेखक की सुविधा दी जा रही है और अनेक जगह छात्र से ही आदेश या दिशा निर्देश लाने के लिए कहा जाता है। उल्लेखनीय है कि यह दिशा निर्देश सिर्फ अकादमिक ही नहीं बल्कि हर तरह की किसी ढंग से ली जाने वाली लिखित परीक्षा पर लागू होते हैं अर्थात प्रवेश और रोज़गार भर्ती परीक्षाओं पर भी और इनमें छोटी या बड़ी कक्षा का कोई उल्लेख नहीं है यानी यह सभी कक्षाओं/स्तर के विकलांग छात्रों/उम्मीदवारों के लिए हैं। 2016 में नया अधिनियम आ जाने बाद 29.8.2018 को नए दिशा निर्देश जारी किए गए जिन्होंने 2013 के दिशा निर्देशों का स्थान लिया। दिशा निर्देशों का सारांश इस प्रकार है :

इन दिशा निर्देशों का पालन सुनिश्चित हो इसके लिए परीक्षा आयोजकों द्वारा आवेदन में विकलांगता संबंधी आवश्यक जानकारी हेतु प्रावधान किया जाना चाहिए। विकलांग परीक्षार्थी की यह जिम्मेदारी है कि इनका लाभ लेने के लिए वह परीक्षा आवेदन भरते वक़्त अपनी विकलांगता और विशेष आवश्यकताओं की पूरी जानकारी सावधानी से दे। नियमों के अनुरूप आयोजकों को पूर्व तैयारी करनी चाहिए जैसे – विकलांग परीक्षार्थी के लिए भूतल पर व्यवस्था करना, उपकरणों, विशेष प्रश्नपत्रों की व्यवस्था, लेखकों, वाचकों एवं प्रयोगशाला सहायकों के समूह बनाना आदि।

दिशा निर्देशों में यहाँ तक कहा गया है कि लिखित परीक्षाओं के लिए पूरे देश में न सिर्फ़ एकरूप और विस्तृत नीति हो बल्कि यह इतनी लचीली भी हो कि यह विकलांग परीक्षार्थियों की अपनी-अपनी विशिष्ट व्यक्तिगत ज़रूरतों का ध्यान रखने में भी समर्थ हो। विकलांग परीक्षार्थी को परीक्षा देने का तरीका चुनने की आज़ादी दी गयी है। इस हेतु वह ब्रेल, कंप्यूटर, बड़े अक्षरों या आवाज़ की रिकॉर्डिंग करने आदि तरीकों में से कोई भी विकल्प चुन सकता है। उसे एक दिन पहले कंप्यूटर की जाँच करने की अनुमति होती है ताकि यदि हार्डवेयर या सॉफ्टवेयर संबंधी कोई समस्या हो तो उसे समय रहते दूर किया जा सके। उसे सहायक उपकरणों, जैसे – बोलने वाला कैलकुलेटर (यदि कैलकुलेटर वापरने की अनुमति हो), टेलर फ्रेम, ब्रेल स्लेट, अबेकस, ज्यामिति किट, नापने की ब्रेल टेप और संप्रेषण उपकरण, के इस्तेमाल की अनुमति है।

दिशा निर्देशों के अनुसार 40% या अधिक विकलांगता वाला कोई भी परीक्षार्थी चाहे तो उसे लेखक, वाचक या प्रयोगशाला सहायक की सुविधा दी जानी चाहिए। परीक्षार्थी अपनी पसंद का लेखक, वाचक या प्रयोगशाला सहायक ला सकता है या परीक्षा के आयोजकों से इनकी माँग कर सकता है। वह अलग-अलग विषय के लिए अलग-अलग लेखक, वाचक या प्रयोगशाला सहायक ले सकता है। इसके लिए परीक्षा के आयोजकों को भी विभिन्न स्तरों पर लेखकों, वाचकों और प्रयोगशाला सहायकों के समूह बनाकर तैयार रखने चाहिए। परीक्षार्थी ऐसे समूह में से एक दिन पहले व्यक्तिगत भेंट कर अपने लिए उचित लेखक, वाचक या प्रयोगशाला सहायक चुन सकता है। लेखक, वाचक या प्रयोगशाला सहायक की शैक्षणिक योग्यता, उम्र आदि का बंधन नहीं लगाया जा सकता और इसके स्थान पर उन पर बेहतर निगरानी रखकर संभावित अनुचित तरीकों के इस्तेमाल को रोकने के इंतज़ाम होने चाहिए । आपात स्थिति में विकलांग परीक्षार्थी को अपना लेखक, वाचक या प्रयोगशाला सहायक बदलने का अधिकार भी है।

इन दिशा निर्देशों के अनुसार परीक्षा लिखने के लिए दिए जानेवाले "अतिरिक्त समय" का सही आशय समझ लेना आवश्यक है। ऐसे सभी विकलांग परीक्षार्थियों को, जो लेखक की सुविधा नहीं लेते, तीन घंटे की परीक्षा में कम से कम एक घंटा अतिरिक्त समय दिया जा सकता है जो व्यक्तिगत ज़रूरत के आधार पर और आगे भी बढ़ाया जा सकता है। लेखक, वाचक या प्रयोगशाला सहायक की सुविधा लेनेवाले परीक्षार्थी को भी "क्षतिपूरक समय" के रूप में अतिरिक्त समय दिया जाना चाहिए जो कि परीक्षा के प्रत्येक घंटे पर बीस मिनट से कम न हो। यदि परीक्षा का समय एक घंटे से कम हो तो अनुपातिक रूप से अतिरिक्त समय दिया जाना चाहिए जो न्यूनतम पाँच मिनट और पाँच के गुणज में होना चाहिए।

दिशा निर्देशों में यह भी कहा गया है कि खुली किताब परीक्षा में भी ब्रेल या ई-टेक्स्ट या ज़रूरी स्क्रीन रीडिंग सॉफ्टवेयर वाले कंप्यूटर पर पठन सामग्री उपलब्ध करायी जानी चाहिए। इसी तरह ऑनलाइन परीक्षा भी सुगम्य (accessible) प्रारूप में होनी चाहिए, जैसे – वेबसाइट, प्रश्नपत्र और अन्य सभी पाठ्य पठन सामग्री मान्य अंतर्राष्ट्रीय मानकों के अनुरूप सुगम्य (accessible) होनी चाहिए।

श्रवण बाधित परीक्षार्थियों के लिए व्याख्यात्मक प्रश्नों की जगह वस्तुनिष्ठ प्रश्नों की व्यवस्था होनी चाहिए इसी तरह दृष्टिबाधितों के लिए भी विज़ुअल इनपुट वाले प्रश्नों के स्थान पर वैकल्पिक प्रश्नों की व्यवस्था की जानी चाहिए।

यह दिशा निर्देश सभी परीक्षा आयोजकों जैसे – कर्मचारी चयन आयोग, यूजीसी, सभी विभागों आदि को भेजे जा चुके हैं और उन्हें निर्देशित किया गया है कि इनके परिपालन की रपट दें। लेकिन विडंबना यह है कि परीक्षा संचालक इनकी अवहेलना कर रहे हैं और उल्टे विकलांग परीक्षार्थी को नियम दिखाने का कहते हैं। ऐसे में गिनेचुने परीक्षार्थी ही इनका थोड़ा लाभ ले पा रहे हैं और अधिकांश लाभ से वंचित ही हैं। इनमें परीक्षार्थी की कोई न्यूनतम या अधिकतम आयु भी निर्दिष्ट नहीं की गयी है जिसका अर्थ यह है कि छोटी-से-छोटी परीक्षा से लेकर बड़ी-से-बड़ी परीक्षा पर यह दिशा निर्देश लागू होने चाहिए।

भारत में विकलांग महिलाओं की साक्षरता दर महज 45% है, जबकि महिलाओं की कुल साक्षरता दर 65% है। विकलांग पुरुषों की साक्षरता दर 62% है। भारत में सिर्फ 8.5% विकलांग स्नातक स्तर तक की शिक्षा प्राप्त हैं। रोज़गार पर शिक्षा का अत्यंत महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। अनुमान यह है कि यदि उचित प्रशिक्षण के माध्यम से कौशल विकास के प्रयास नहीं किए गए तो 2022 तक भारत में बेरोज़गार विकलांगों की संख्या 1 करोड़ से अधिक हो जाएगी।

रोज़गार :

रोज़गार के क्षेत्र में भी विकलांगों की स्थिति अच्छी नहीं कही जा सकती। चिकित्सा सुविधाओं की कमी, बाधामुक्त वातावरण की कमी, शिक्षा से विकलांगों के कम जुड़ाव और कौशल विकास प्रशिक्षण की कमी के कारण रोज़गार और स्वरोज़गार के क्षेत्र में भी कम विकलांग प्रवेश कर पाते हैं। हालाँकि, 1995 के क़ानून में विकलांगों को रोज़गार में 3% आरक्षण दिया गया था जिसे बढ़ाकर 2016 के क़ानून में 4% कर दिया गया है लेकिन शैक्षिक योग्यता की कमी और कार्य स्थलों की कठिनाइयों के कारण पर्याप्त संख्या में विकलांग उम्मीदवार इनका लाभ नहीं ले पा रहे हैं। सिर्फ सरकारी नौकरियों में उनके लिए आरक्षण है। निजी क्षेत्र में आरक्षण लागू नहीं है, जिसके कारण अवसरों की कमी है। अन्यथा अपने आसपास के इलाके में निजी क्षेत्र में विकलांगों को उनकी योग्यता अथवा क्षमता के अनुसार नौकरियाँ मिल जाती। विकलांगों के स्वरोज़गार के लिए नेशनल हैंडीकैप्ड फाइनेंस एंड डेवलमेंट कारपोरेशन (एनएचएफडीसी) के माध्यम से रियायती ब्याज दरों पर आर्थिक सहायता उपलब्ध कराए जाने का प्रावधान है, लेकिन जागरूकता की कमी, स्वरोज़गार के लिए कौशल की कमी और कर्ज़ लेने की जटिल प्रक्रिया के कारण बहुत कम विकलांगों को इसका लाभ मिल पा रहा है। ब्याज की दरें और कम किए जाने की ज़रूरत है। बैंकों और अन्य वित्तीय संस्थानों द्वारा भी उन्हें स्वरोज़गार के लिए ऋण दिया जाता है, लेकिन ब्याज दरें बहुत अधिक हैं। रोज़गार के अभाव में दूसरों पर आर्थिक रूप से निर्भर रहने के कारण परिवार और समाज में विकलांगो को उचित सम्मान नहीं मिल पाता। भारत में विकलांगों की आबादी का सिर्फ़ 36.3% रोज़गार में है यानी 98 लाख विकलांग रोज़गार में हैं। इनमें से 71 लाख पुरुष और 27 लाख महिलाएं हैं।

गरीबी, शिक्षा की कमी और विकलांगता का आपसी संबंध :

विकलांगता, गरीबी और अशिक्षा या शिक्षा की कमी का आपस में गहरा नाता है। गरीबी बड़े पैमाने पर अशिक्षा या कम शिक्षा और विकलांगता का कारण बनती है। गरीबी के कारण बड़े पैमाने पर बच्चों को शिक्षा से जुड़ने का अवसर ही नहीं मिल पाता और यदि कोई गरीब बच्चा शिक्षा से जुड़ भी जाए तो काम करने लायक होने पर उसे शिक्षा से दूर कर धन अर्जन के लिए काम में लगा दिया जाता है। गरीब परिवारों में शिक्षा का वातावरण कम होता है और शिक्षा के महत्व के प्रति उनकी समझ भी कम होती है। इन सब कारणों से शिक्षा में उनका पिछड़ापन पीढ़ी दर पीढ़ी बना रहता है। ठीक इसी तरह अशिक्षा या कम शिक्षा बड़े पैमाने पर गरीबी और विकलांगता का कारण बनती है। अशिक्षित या कम शिक्षित होने के कारण व्यक्ति के लिए रोज़गार या स्वरोज़गार के ऐसे बहुत से अवसर अनुपलब्ध हो जाते हैं जिनके लिए शिक्षा ज़रूरी होती है। इस प्रकार उनके लिए रोज़गार के अवसर सीमित हो जाते हैं। रोज़गार के जो अवसर उनके लिए शेष बचते हैं आमतौर पर वह शारीरिक श्रम से जुड़े होते हैं जिनमें पक्का रोज़गार उपलब्ध नहीं होता। उन्हें जितना भी काम मिलता है उसी से किसी तरह उन्हें अपने परिवार का गुज़ारा करना पड़ता है और उदर पोषण उनकी पहली प्राथमिकता होती है। वस्त्र, आवास और चिकित्सा सुविधाओं तक पहुंच के मामले में वे काफी पीछे होते हैं और शिक्षा उनकी प्राथमिकताओं के दायरे से बाहर होती है। सरकारी प्रोत्साहन आदि के कारण ऐसे परिवार अपने बच्चों को प्रारंभिक शिक्षा से जोड़ भी दें तो लंबे समय तक उनकी शिक्षा जारी नहीं रख पाते।

गरीबी और अशिक्षा या कम शिक्षा विकलांगता के प्रमुख कारणों में शामिल हैं। गरीब और अशिक्षित परिवार वैज्ञानिक सोच के बजाय रूढ़िवादी सोच और अपनी सामाजिक प्रथाओं का पालन करते हैं । ऐसे में कमजोर स्वास्थ्य, छोटी उम्र में विवाह, पोषण की कमी, स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुंच की कमी, कम या अधिक उम्र में गर्भधारण विकलांगता के कारण हो सकते हैं। ऐसे परिवारों में विकलांगता से बचाव के

लिए गर्भावस्था के दौरान रखी जाने वाली सावधानियों के बारे जानकारी की कमी होती है। इन परिवारों में घरेलू हिंसा, मानसिक और भावनात्मक समस्याएं, चिकित्सीय परामर्श की कमी, तंबाकू, धूम्रपान या नशे का सेवन, मनमानी दवाएँ देना, चिकित्सक द्वारा लिखी गई दवाएँ नहीं लेना, पोषण का निम्न स्तर, कठोर परिश्रम करने की मजबूरी आदि समस्याएँ होती हैं। इनके कारण आने वाली संतानों को विकलांगता हो सकती है। इनके अलावा गरीबी और अशिक्षा के चलते अयोग्य व्यक्ति के हाथों घर पर प्रसव, अस्पताल में प्रसव नहीं कराना, प्रसव के दौरान मां या जन्म लेने वाले बच्चे को कोई समस्या हो जाना, जन्म के तुरंत बाद बच्चे को तत्काल चिकित्सीय हस्तक्षेप की ज़रूरत होना लेकिन परिवार द्वारा इसकी व्यवस्था न कर पाना आदि भी विकलांगता के कारण बन सकते हैं। जन्म के बाद भी अनेक कारणों से बच्चों या अन्य व्यक्तियों को विकलांगताएँ हो सकती हैं, जिनसे रक्षा के लिए उचित ज्ञान और उचित चिकित्सीय हस्तक्षेप जरूरी होते हैं। लेकिन अशिक्षा और गरीबी इसमें बाधक बनते हैं। अगर किसी कारण परिवार में किसी को विकलांगता हो जाए तो अशिक्षा उसे समझने में असफलता या देर का कारण बनती है जिससे ज़रूरी हस्तक्षेप में भी चूक या देर होती है और गरीबी भी हस्तक्षेप का लाभ लेना मुश्किल या असंभव बनाती है।

भारत में व्यापक गरीबी और साथ ही अशिक्षा, शिक्षा की कमी, अंधविश्वास, मिथ्या धारणाएं, सही जानकारी और जागरूकता का अभाव विकलांगता की व्यापकता बढ़ाने वाले मुख्य कारकों में शामिल हैं।

अत्यंत अल्प सामाजिक सुरक्षा लाभ :

समाज में विकलांगों के प्रति संवेदनशीलता की कमी का गंभीर नकारात्मक असर विकलांगों के कल्याण के लिए बनाई जाने वाली योजनाओं अर्थात सामाजिक सुरक्षा योजनाओं पर पड़ता है। यह नकारात्मक प्रभाव उनके कार्यान्वयन पर भी उतना ही अधिक पड़ता है। भारत में कहने को तो विकलांगों के लिए अनेक सामाजिक सुरक्षा योजनाएँ हैं, लेकिन उनके अंतर्गत दी जाने वाली सहायता या लाभ अत्यंत अल्प हैं। इनमें मोटे तौर पर सामाजिक सुरक्षा पेंशन, छात्रवृत्ति, सहायक उपकरण, रेल यात्रा किराए में रियायत, आयकर में छूट, शिक्षा और प्रशिक्षण के लिए स्टाइपंड एवं छात्रावास या आवागमन भत्ता, स्वरोज़गार के लिए ब्याज दरों में रियायत शामिल हैं। राष्ट्रीय न्यास अधिनियम 1999 के अधीन आने वाले विकलांगों को एक निरामय स्वास्थ्य बीमा योजना का लाभ मिलता है लेकिन अन्य विकलांगों के लिए यह लाभ भारत शासन द्वारा उपलब्ध नहीं कराया गया है। अपने आप में यह स्वयं भारत सरकार द्वारा विकलांगों के बीच भेदभाव है। स्वास्थ्य बीमा सभी प्रकार के विकलांगों की एक सामान्य जरूरत है। विकलांगों के लिए एक अन्य स्वावलंबन स्वास्थ्य बीमा योजना आरंभ की गई थी लेकिन वह एक ही बीमा कंपनी के माध्यम से संचालित थी। उसके बारे में प्रचार प्रसार की कमी के कारण विकलांगों को योजना के बारे में अपवादस्वरूप ही जानकारी हो पाई और वे उसका लाभ नहीं ले पाए। वर्तमान में योजना जारी है या नहीं यह भी नहीं पता। छात्रवृत्ति, सामाजिक सुरक्षा पेंशन, स्टाइपंड, भत्तों आदि के रूप में दी जाने वाली सहायताएँ अत्यंत अल्प है और इन्हें लंबे अंतराल तक बढ़ाया भी नहीं जाता और जब बढ़ाया जाता है तब तक इतनी देर हो चुकी होती है कि बढ़ोतरी के बाद भी सहायता कम ही मालूम पड़ती है। ज़रूरत इस बात की है कि एक बार सभी योजनाओं को वास्तविक लागतों के अनुसार उचित स्तर पर लाया जाए और उन्हें लागत सूचकांकों के साथ जोड़कर अर्धवार्षिक और वार्षिक आधार पर बढ़ी हुई लागतों के हिसाब से उनमें नियमित बढ़ोतरी की जाए। विकलांगों को प्रदान की जाने वाली सहायता का वास्तविक लागतों के साथ तालमेल स्थापित करना और बनाए रखना बेहद ज़रूरी है, अन्यथा योजनाओं के कागज़ों पर लाभान्वितों की संख्या तो नज़र आएगी लेकिन विकलांगों को प्रभावी और उचित सामाजिक सुरक्षा प्राप्त नहीं होगी। भारतीय संदर्भ में विकलांगों की सामाजिक सुरक्षा संबंधी ज़रूरतों की पहचान करने और प्रदान की जाने वाली सहायता का स्तर निर्धारित करने की ज़रूरत है। साथ ही इस बात की भी ज़रूरत है कि कल्याणकारी योजनाओं के बारे में पर्याप्त प्रचार प्रसार किया जाए। सामाजिक सुरक्षा योजनाओं के बारे में एक गंभीर विसंगति यह भी है कि देश के सभी राज्यों में या सभी स्थानों पर या राज्य में सभी ज़िलों में या ज़िलों की सभी तहसीलों में योजनाओं के क्रियान्वयन में एकरूपता नहीं है। उदाहरण के लिए एक से अधिक योजनाओं का लाभ एक साथ मिलने का प्रावधान होने और इसके लिए पात्रता होने के बावजूद कहीं यह लाभ एक साथ प्रदान किए जाते हैं और कहीं एक ही लाभ प्रदान किया जाता है। इसी तरह ज़िला विकलांग पुनर्वास केंद्र (डीडीआरसी) सभी ज़िलों में मौजूद नहीं हैं। क्षेत्रीय पुनर्वास केंद्र (सीआरसी) सभी राज्यों में मौजूद नहीं हैं। राष्ट्रीय न्यास अधिनियम 1999 के अधीन लोकल लेवल कमेटियाँ भी अब तक सभी ज़िलों में गठित नहीं हुई हैं। विकलांगजन अधिकार अधिनियम 2016 और राष्ट्रीय न्यास अधिनियम 1999 के अधीन गठित विभिन्न ज़िला स्तरीय समितियों की बैठकें नियमानुसार नियत अंतराल पर नहीं होती हैं। ऐसी और भी अनेक विसंगतियां हैं। इनकी तरफ गंभीरतापूर्वक ध्यान देने की ज़रूरत है। इसके अलावा शहरी और ग्रामीण स्तरों पर योजनाओं के बारे में जागरूकता और कार्यान्वयन के स्तर में और उन तक विकलांगों की पहुंच में बहुत ज़्यादा अंतर है।

विकलांगता का प्रमाणन :

1995 और 2016 के विकलांगता संबंधी क़ानूनों में विकलांगता को ज़िला चिकित्सा मंडल द्वारा प्रमाणित करने का प्रावधान किया गया। किसी भी व्यक्ति को 40% या अधिक क्षति होने पर विकलांगता प्रमाण-पत्र जारी किया जाता है और वह इस प्रमाण-पत्र के आधार पर विकलांगता संबंधी लाभ प्राप्त कर सकता है। कुछ ही समय पहले यूनिक डिसेबिलिटी आइडेंटिटी (यूडीआईडी) कार्ड की व्यवस्था लागू की गयी है जो विकलांगजनसशक्तिकरण विभाग, सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय, भारत शासन द्वारा जारी किया जाता है। यूडीआईडी एक ऐसा दस्तावेज़ है जो विकलांगता प्रमाण-पत्र का कार्य करने के साथ सभी संबंधित लाभ प्राप्त करने के लिए अधिकृत दस्तावेज़ का भी काम करता है, अतः विकलांग व्यक्ति को अनेक दस्तावेज़ और उनकी प्रतियाँ साथ लेकर नहीं चलना पड़ता।

ज़िला चिकित्सा मंडल द्वारा विकलांगता प्रमाण-पत्र बनाए जाने की प्रक्रिया उन विकलांगों के लिए विशेष रूप से कठिनाईपूर्ण है जो ज़िला मुख्यालय पर नहीं रहते हैं। ज़िला मुख्यालय के बाहर और दूरदराज के गाँवों में रहने वालों को विकलांगता प्रमाण-पत्र बनवाने के लिए ज़िला मुख्यालय पर जाना होता है और प्रमाण-पत्र बन जाने के बाद उसे लेने के लिए दोबारा जाना पड़ता है। ज़िला चिकित्सा मंडल भी प्रत्येक दिन नहीं बैठता। अलग-अलग ज़िलों ने अपनी सुविधानुसार विकलांगता प्रमाण-पत्र बनाने के लिए ज़िला चिकित्सा मंडल के बैठने के अलग-अलग दिन तय कर रखे हैं और कहीं कहीं तो विकलांगताओं के अनुसार दिन तय कर दिए गए हैं। दूसरी कठिनाई यह है कि प्रत्येक ज़िले में ज़िला चिकित्सालय में हर तरह के विशेषज्ञ भी उपलब्ध नहीं है जिसके कारण विकलांग व्यक्ति के मूल्यांकन और उसका प्रमाण-पत्र बनाने में बाधा आती है, जैसे न्यूरॉलॉजिस्ट, मनोचिकित्सक, मनोवैज्ञानिक आदि की कमी। सभी तरह के विशेषज्ञों के न होने के कारण सभी तरह की विकलांगताओं के प्रमाण-पत्र बनाना मुश्किल होता है। ज़िला प्रशासन इस कमी की पूर्ति के लिए अपने विवेक से स्थानीय स्तर पर निर्णय लेता है, लेकिन ज़रूरी नहीं कि समस्या का समाधान हो ही जाए। इसके अलावा एक और कठिनाई है। अनेक मामलों में विकलांगता प्रमाणित करने के लिए विशिष्ट परीक्षणों की ज़रूरत होती है जिनकी व्यवस्था आमतौर पर ज़िला चिकित्सालय में अथवा ज़िला मुख्यालय पर उपलब्ध नहीं है, जैसे मस्क्युलर डिस्ट्रॉफ़ी के मामले में मांसपेशीय बायप्सी की ज़रूरत। इन विशिष्ट परीक्षणों के लिए परिजनों को विकलांग व्यक्ति को लेकर दूर स्थित बड़े शहरों में जाना पड़ता है। ऐसी स्थिति में बहुत से लोग यह परीक्षण करा भी नहीं पाते और विकलांगता प्रमाण-पत्र भी नहीं बनवा पाते। यह निश्चित है कि इन कमियों के कारण विकलांगता प्रमाण-पत्र बनाने के कानूनी प्रावधान का पालन ठीक से नहीं हो पाता है, विकलांग और उनके परिजन परेशान होते हैं और कार्य की गुणवत्ता पर भी विपरीत प्रभाव पड़ता है। कानूनी प्रावधान के साथ उसके कार्यान्वयन के लिए ठोस व्यवस्था के बिना प्रावधान का उद्देश्य और उससे मिलने वाले लाभ दोनों पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।